Vagisha International Multidisciplinary Research Journal
(International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal)
Volume-01, Issue-03, June-2026| ISSN: 3139-2776 (online)
Available online at:https://vimrj.com/
DOI: https://doi.org/10.67185/vimrj.v1i3.23

महाकवि भास के महाभारत–मूलक रूपकों का ध्वनि–सिद्धांत की दृष्टि से समीक्षात्मक अध्ययन

अंकित[1], डॉ. राजीव मिश्र[2]

[1]शोध छात्र, संस्कृत विभाग सर्वोदय पीजी कॉलेज घोषी, मऊ

[2]शोध निदेशक, संस्कृत विभाग, सर्वोदय पीजी कॉलेज घोषी, मऊ

e-mail : ankityadav7494@gmail.com

Received: 14 May 2026 **| Accepted:** 20 May 2026 **| Published:** 25 June 2026

सारांश

संस्कृत साहित्य की नाट्यपरंपरा में महाकवि भास का विशिष्ट स्थान है। उनकी नाट्यरचनाएँ भारतीय सांस्कृतिक चेतना, मानवीय संवेदनाओं, नैतिक द्वंद्वों तथा काव्यात्मक अभिव्यक्ति की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। विशेष रूप से महाभारत की कथावस्तु पर आधारित उनके रूपकों में कथानक, चरित्र–चित्रण, भावाभिव्यक्ति और नाटकीय परिस्थितियों के माध्यम से गहन अर्थों की अभिव्यक्ति दिखाई देती है। प्रस्तुत शोध–पत्र का उद्देश्य महाकवि भास के महाभारत–मूलक रूपकों का ध्वनि–सिद्धांत की दृष्टि से समीक्षात्मक अध्ययन करना है। भारतीय काव्यशास्त्र में आचार्य आनंदवर्धन द्वारा प्रतिपादित ध्वनि–सिद्धांत काव्य में प्रत्यक्ष अर्थ से परे निहित व्यंग्यार्थ की महत्ता को स्थापित करता है। इस दृष्टिकोण से भास के नाटकों में अभिव्यक्त रसध्वनि, भावध्वनि, वस्तुध्वनि तथा अन्य व्यंजना–तत्त्वों का विश्लेषण किया जा सकता है। अध्ययन में नाटकीय संवादों, पात्रों की मनःस्थितियों, कथानक के प्रमुख प्रसंगों तथा नाटकीय अभिव्यक्ति के माध्यम से उत्पन्न व्यंग्यार्थ का परीक्षण किया जाएगा। साथ ही, यह समझने का प्रयास किया जाएगा कि भास ने महाभारत की मूल कथावस्तु का पुनर्सृजन करते हुए किस प्रकार नाटकीय प्रभाव, मानवीय संवेदना और काव्यात्मक अर्थगर्भिता को विकसित किया। यह अध्ययन संस्कृत नाट्यसाहित्य और भारतीय काव्यशास्त्र के अंतर्संबंधों को स्पष्ट करने में सहायक हो सकता है।

मुख्य शब्द : महाकवि भास, महाभारत–मूलक रूपक, संस्कृत नाट्यसाहित्य, ध्वनि–सिद्धांत, व्यंजना, रसध्वनि, आनंदवर्धन, भारतीय काव्यशास्त्र, नाटकीय अभिव्यक्ति।

प्रस्तावना

भारतीय साहित्यिक परंपरा में संस्कृत नाट्यसाहित्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है। नाटक केवल घटनाओं और पात्रों की प्रस्तुति का माध्यम नहीं है, बल्कि इसके माध्यम से मानवीय भावनाओं, सामाजिक मूल्यों, नैतिक संघर्षों और जीवन की जटिल परिस्थितियों को कलात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की जाती है। संस्कृत नाट्यपरंपरा में महाकवि भास ऐसे प्रमुख नाटककार हैं, जिनकी रचनाओं में कथात्मक प्रभाव, चरित्रों की मनोवैज्ञानिक जटिलता तथा नाटकीय परिस्थितियों का सशक्त संयोजन मिलता है। उनकी महाभारत–आधारित नाट्यरचनाएँ महाकाव्य की प्रसिद्ध घटनाओं को रंगमंचीय दृष्टि से पुनर्व्याख्यायित करती हैं। भारतीय काव्यशास्त्र में ध्वनि–सिद्धांत काव्य की अर्थवत्ता को समझने का एक महत्त्वपूर्ण आधार है। आचार्य आनंदवर्धन ने अपनी कृति ध्वन्यालोक में व्यंग्यार्थ को काव्य की आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित किया। इस सिद्धांत के अनुसार, काव्य का प्रभाव केवल वाच्यार्थ तक सीमित नहीं रहता, बल्कि शब्दों, प्रसंगों, संवादों और भावों के माध्यम से ऐसे अर्थ भी संप्रेषित होते हैं, जो प्रत्यक्ष रूप से व्यक्त नहीं किए जाते। नाट्यसाहित्य में यह प्रक्रिया विशेष महत्त्व रखती है, क्योंकि पात्रों के कथन, मौन, व्यवहार और परिस्थितियों के माध्यम से अनेक अप्रत्यक्ष भाव तथा अर्थ अभिव्यक्त होते हैं। महाकवि भास के महाभारत–मूलक रूपकों का ध्वनि–सिद्धांत के आधार पर अध्ययन करने से उनकी नाट्यकला के उन पक्षों को समझने का अवसर मिलता है, जो सामान्य कथानक–विवेचन से पूरी तरह स्पष्ट नहीं हो पाते। इस अध्ययन में विशेष रूप से व्यंग्यार्थ, रसाभिव्यक्ति, पात्रों की आंतरिक भावभूमि और नाटकीय संवादों की अर्थगर्भिता पर ध्यान केंद्रित किया जाएगा। इस प्रकार प्रस्तुत शोध का उद्देश्य भास की नाट्यप्रतिभा का मूल्यांकन करते हुए संस्कृत नाट्यसाहित्य और ध्वनि–सिद्धांत के पारस्परिक संबंधों को आलोचनात्मक दृष्टि से स्पष्ट करना है।

समीक्षात्मक विश्लेषण

रूपक के दस प्रमुख भेदों का वर्गीकरण मुख्यतः तीन आधारभूत तत्त्वों के आधार पर किया जाता है। ये तीन भेदक तत्त्व हैंरू कथावस्तु, नायक तथा रस। इन तत्त्वों में होने वाले परिवर्तन के आधार पर विभिन्न रूपक–प्रकारों की स्वतंत्र पहचान निर्धारित होती है। प्रत्येक रूपक में कथानक की प्रकृति, नायक का स्वरूप, प्रमुख रस तथा अंकों की संरचना अलग–अलग रूप ग्रहण करती है। संस्कृ त नाट्यशास्त्रीय परंपरा में इन दस रूपकों का क्रमबद्ध विवेचन किया गया है। उनका संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है।

(1) नाटक

दस रूपकों में नाटक को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और व्यापक रूप माना गया है। अन्य रूपकों के लिए भी नाटक को आदर्श अथवा मूल प्रकृति के रूप में स्वीकार किया गया है। इसकी संरचना में वस्तु, नायक और रस संबंधी रूपक के प्रमुख लक्षण अपेक्षाकृत पूर्ण रूप में दिखाई देते हैं। रसोत्पत्ति की दृष्टि से भी नाटक अन्य रूपक–प्रकारों की अपेक्षा अधिक व्यापक माना जाता है। इसी कारण सामान्य अर्थ में सम्पूर्ण रूपक–विधा के लिए भी 'नाटक' शब्द का प्रयोग मिलता है। आचार्यों ने इसकी प्रकृतिगत प्रधानता, रस की व्यापकता और सम्पूर्ण लक्षणों की उपलब्धता को निम्न श्लोक के माध्यम से स्पष्ट किया है–

प्रकृतित्वादथान्येषां भूयो रसपरिग्रहात।
सम्पूर्णलक्षणत्वाच्च पूर्वं नाटकमुच्यते।।[1]

नाटक की कथावस्तु प्रायः प्रसिद्ध होती है। इसका आधार इतिहास, पुराण अथवा लोकप्रसिद्ध आख्यान हो सकता है। कथानक सामान्यतः किसी प्रसिद्ध राजवंश, राजा या विशिष्ट नायक के जीवन से संबंधित घटनाओं को लेकर विकसित किया जाता है। नाटक का नायक उच्चकुल में उत्पन्न राजा अथवा राजर्षि होता है और उसके चरित्र में सामान्यतः धीरोदात्त नायक के गुण अपेक्षित माने जाते हैं। कथानक और प्रधान रस की आवश्यकता के अनुसार कभी–कभी धीरोद्धत अथवा धीरललित नायक का भी विधान किया जा सकता है, किंतु धीरप्रशान्त नायक नाटक के लिए सामान्यतः स्वीकार्य नहीं है। श्रीराम और श्रीकृष्ण जैसे दिव्य अथवा दिव्य–मानवीय नायक भी इस परंपरा में नाटक के उपयुक्त नायक माने गए हैं।

इस प्रकार नाटक की कथावस्तु का चयन नायक के चरित्र और उसके जीवन से संबंधित घटनाओं के आधार पर किया जाता है। कथानक में मूल प्रसिद्ध कथा को बनाए रखते हुए नाटकीय प्रभाव उत्पन्न करने के लिए कुछ घटनाओं में परिवर्तन, विस्तार अथवा कल्पित प्रसंगों का समावेश किया जा सकता है। हालांकि, ऐसे परिवर्तन तभी उचित माने जाते हैं जब वे मुख्य रस की अनुभूति को बाधित न करें। कथा का प्रत्येक प्रसंग प्रधान रस की निष्पत्ति और नाटकीय प्रभाव को सुदृढ़ करने वाला होना चाहिए। नाटक में सामान्यतः शृंगार अथवा वीर रस को अंगी रस के रूप में प्रतिष्ठित किया जाता है–

एक एव भवेदंगी शृंगारों वीर एव वा।[2]

अन्य रसों का प्रयोग सहायक अथवा गौण रूप में किया जा सकता है। यदि कथानक का कोई प्रसंग प्रधान रस के विपरीत प्रभाव उत्पन्न करता है और रसास्वादन में व्यवधान पैदा करता है, तो उसे

परिवर्तित, सीमित अथवा कथानक से पृथक किया जाता है। इस प्रकार नाटक की संरचना में कथानक और रस के बीच गहरा सामंजस्य अपेक्षित होता है।

अंकों की संख्या की दृष्टि से नाटक में सामान्यतः पाँच से दस अंक हो सकते हैं। कथा के क्रमिक विकास और नाटकीय संगठन को सुव्यवस्थित करने के लिए आचार्यों ने पाँच अर्थप्रकृतियों, पाँच कार्यावस्थाओं तथा उनसे निर्मित पाँच सन्धियों का विधान किया है। अर्थप्रकृतियों में बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य सम्मिलित हैं। इसी प्रकार कार्यावस्थाएँ आरम्भ, यत्न, प्रत्याशा, नियताप्ति और फलागम मानी गई हैं। इन दोनों के पारस्परिक संयोजन से मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और निर्वहण नामक पाँच सन्धियाँ निर्मित होती हैं।

जिस नाटक में इन सभी नाट्य–संरचनात्मक तत्त्वों का समुचित निर्वाह होता है, उसे महानाटक की संज्ञा प्रदान की जाती है। बालरामायण तथा हनुमन्नाटक इसके प्रमुख उदाहरण माने जाते हैं। नाटक की अंतिम सन्धि में अद्‌भुत रस का समुचित प्रयोग नाटकीय कौतूहल और प्रभाव को बढ़ा सकता है। नाटक की रचना के संबंध में गोपुच्छाग्रवत् विन्यास का उल्लेख मिलता है। इसका आशय यह है कि आरंभ और अंत अपेक्षाकृत संक्षिप्त तथा मध्य भाग विस्तृत और विकसित होना चाहिए। संस्कृत साहित्य में भास, कालिदास और भवभूति जैसे महान नाटककारों ने इस परंपरा को समृद्ध किया। आधुनिक काल में भी नाटक की रचना निरंतर साहित्यिक अभिव्यक्ति के एक महत्त्वपूर्ण माध्यम के रूप में होती रही है।

(2) प्रकरण

प्रकरण नाटक से भिन्न ऐसा रूपक है जिसकी कथावस्तु मुख्यतः कवि की कल्पना और रचनात्मक योजना पर आधारित होती है। इसका कथानक किसी प्रसिद्ध ऐतिहासिक अथवा पौराणिक आख्यान पर पूर्णतः निर्भर नहीं रहता, बल्कि कवि अपनी कल्पना के माध्यम से घटनाओं और पात्रों का विन्यास करता है। प्रकरण सामान्यतः दस अंकों का माना गया है। इस रूपक का नायक प्रायः ब्राह्मण अथवा वैश्य होता है और नायक–भेद की दृष्टि से उसे धीरप्रशान्त श्रेणी में रखा जाता है। प्रकरण में सामाजिक जीवन, प्रेम, व्यक्तिगत संबंध तथा मानवीय परिस्थितियों से संबंधित प्रसंगों का विस्तार संभव होता है। इसका सर्वाधिक प्रसिद्ध उदाहरण शूद्रक रचित मृच्छकटिकम् है। इसमें चारूदत्त नायक है तथा वसन्तसेना के साथ उसके प्रणय–संबंध को कथानक का महत्त्वपूर्ण आधार बनाया गया है। इस प्रकार प्रकरण में कल्पित कथावस्तु के माध्यम से मानवीय जीवन और सामाजिक परिस्थितियों का नाटकीय चित्रण किया जाता है।

अमात्य–विप्र–वणिजामेकं कुर्याच्च नायकम।[3]

(3) भाण

भाण रूपक का तीसरा प्रमुख प्रकार है। इसकी विशिष्टता एक ऐसे कुशल विट अथवा धूर्त पुरुष के चरित्र और अनुभवों के प्रस्तुतीकरण में निहित है, जिसके माध्यम से घटनाओं और प्रसंगों को नाटकीय रूप दिया जाता है। कथानक प्रत्यक्ष रूप से अनेक पात्रों की गतिविधियों के माध्यम से नहीं, बल्कि एक ही पात्र की वाणी और अभिनय के माध्यम से विकसित होता है। आचार्य ने इसकी प्रकृति को इस प्रकार व्यक्त किया है–

भाणस्तु धूर्तचरितं स्वानुभूतं परेणवा।
यत्रोपवर्णयेदेको निपुणः पण्डितो विटः।।[4]

भाण सामान्यतः एक अंक का रूपक होता है और इसकी सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें मंच पर मुख्यतः एक ही पात्र उपस्थित रहता है। यह पात्र अपने अनुभवों अथवा अन्य व्यक्तियों से संबंधित घटनाओं का वर्णन करता हुआ कथा को आगे बढ़ाता है। रंगमंचीय प्रस्तुति में वह कभी आकाश की ओर देखकर अथवा किसी अदृश्य व्यक्ति से संवाद करते हुए ऐसी शैली अपनाता है, जिससे दर्शक को अनेक व्यक्तियों की उपस्थिति का आभास होता है। इस प्रकार एकल पात्र की वाचिक और अभिनय–कौशल के माध्यम से सम्पूर्ण कथा का संप्रेषण किया जाता है।

(4) प्रहसन

प्रहसन हास्यप्रधान रूपक है, जिसका मूल उद्देश्य मनोरंजन के साथ सामाजिक और व्यवहारगत विसंगतियों को नाटकीय रूप में प्रस्तुत करना है। इसकी संरचना सामान्यतः एक अथवा दो अंकों में होती है। इसमें विभिन्न प्रकार के ढोंगी, धूर्त, सेवक, सेविकाएँ तथा ऐसे पात्र प्रस्तुत किए जाते हैं जिनके आचरण और कथन से हास्य की स्थिति उत्पन्न होती है। प्रहसन में सामाजिक कुरीतियों, पाखंड, धार्मिक आडंबर तथा नैतिक विसंगतियों पर व्यंग्यात्मक टिप्पणी की जाती है। ढोंगी गुरु और कामुक पात्र जैसे चरित्रों के माध्यम से समाज में प्रचलित दोषपूर्ण प्रवृत्तियों को हास्य के माध्यम से उजागर किया जाता है। इस कारण प्रहसन केवल विनोद का माध्यम नहीं रहता, बल्कि उसमें व्यंग्य और सामाजिक आलोचना का प्रभाव भी दिखाई देता है।

प्रहसन की प्रस्तुति में विभिन्न वीथ्यंगों का उपयोग किया जाता है। इनमें उद्घात्यक, अवगलित, प्रपंच, त्रिगत, छल, वाक्केलि, अधिवल, गण्ड, अवस्यन्दित, नालिका, असत्प्रलाप, व्याहार और मृदव प्रमुख हैं। इन नाटकीय उपकरणों के प्रयोग से संवादों में चातुर्य, हास्य और व्यंग्यात्मक प्रभाव उत्पन्न होता है। हास्य रस की विभिन्न अवस्थाओं, जैसे हसित, अपहसित आदि छह भेदों का भी प्रहसन में प्रयोग किया जाता है–

रसस्तु भूयसा कार्यः षड्विधो हास्य एव तु।[5]

इस प्रकार प्रहसन में हास्य के साथ व्यंग्यात्मक चमत्कार का समन्वय दिखाई देता है और सामाजिक व्यवहार की विसंगतियों को मनोरंजक ढंग से सामने लाया जाता है।

(5) डिम

डिम ऐसा रूपक है जिसमें उग्र, भयावह और संघर्षपूर्ण परिस्थितियों का प्रभाव प्रमुख रहता है। इसकी संरचना सामान्यतः चार अंकों में की जाती है। इसमें रौद्र रस को प्रधान स्थान प्राप्त है, जबकि भयानक और वीभत्स रस भी इसकी नाटकीय संरचना में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। डिम में युद्ध, संघर्ष, हिंसात्मक परिस्थितियों और अलौकिक घटनाओं का प्रभाव अधिक स्पष्ट होता है। इसके पात्र सामान्य मानवीय चरित्रों तक सीमित नहीं रहते। राक्षस, देवता, भूत–प्रेत तथा अन्य अलौकिक शक्तियाँ इसके पात्रों के रूप में प्रस्तुत की जा सकती हैं। इस प्रकार डिम की कथात्मक और पात्रगत संरचना इसे अन्य रूपक–प्रकारों से अलग पहचान प्रदान करती है। इसकी नाटकीयता मुख्यतः उग्र भावों और असाधारण घटनाओं के माध्यम से निर्मित होती है।

(6) व्यायोग

व्यायोग एकांकी रूपक है, अर्थात् इसमें सामान्यतः एक अंक होता है। इसकी कथावस्तु प्रायः युद्ध अथवा वीरतापूर्ण संघर्ष से संबंधित होती है और उसका आधार इतिहास अथवा प्रसिद्ध आख्यानों में मिलता है। इसलिए इसमें युद्ध, पराक्रम, संघर्ष और वीरता से संबंधित घटनाओं को विशेष महत्त्व प्राप्त होता है। व्यायोग की पात्र–संरचना में पुरुष पात्रों की संख्या अधिक रहती है, जबकि स्त्री पात्रों की उपस्थिति अपेक्षाकृत कम होती है। इसकी कथा में युद्ध और वीरतापूर्ण परिस्थितियों की प्रधानता होने के कारण पुरुष चरित्रों के पराक्रम और संघर्ष को अधिक स्थान मिलता है। 'सौगंधिकाहरण' को व्यायोग का प्रमुख उदाहरण माना जाता है।

(7) समवकार

समवकार शब्द का मूल अर्थ ऐसी रचना से संबंधित है जिसमें अनेक कथात्मक प्रसंगों अथवा घटनाओं का प्रकीर्णन दिखाई देता है। इस रूपक में विभिन्न पात्रों और घटनाओं का समागम कथानक की संरचना को विशिष्ट स्वरूप प्रदान करता है। इसकी कथावस्तु प्रायः पौराणिक आख्यानों से ग्रहण की जाती है। समवकार में विशेष रूप से देवताओं और असुरों के संघर्ष, युद्ध तथा वीरतापूर्ण कार्यों का चित्रण मिलता है। पौराणिक कथाओं में वर्णित दैवी और आसुरी शक्तियों के बीच संघर्ष को नाटकीय

रूप में प्रस्तुत करके वीरता तथा युद्धप्रधान परिस्थितियों को प्रभावशाली बनाया जाता है। इस प्रकार समवकार की पहचान उसके बहु–प्रसंगात्मक कथानक तथा पौराणिक संघर्षों की प्रस्तुति से होती है।

(8) वीथी

वीथी अत्यंत संक्षिप्त रूपक–प्रकार है। इसकी संरचना सामान्यतः एक अंक में होती है और इसमें पात्रों की संख्या भी सीमित रहती है। भाण की भाँति इसमें प्रायः एक अथवा दो पात्रों के माध्यम से कथानक को आगे बढ़ाया जाता है। सीमित पात्र और संक्षिप्त संरचना इसकी प्रमुख विशेषताएँ हैं। वीथी में शृंगार रस को विशेष महत्त्व दिया जाता है। यद्यपि अन्य रसों का स्पर्श भी संभव है, लेकिन शृंगार की प्रधानता इसकी विशिष्ट नाट्यगत विशेषता मानी जाती है। इस संबंध में कहा गया है –

रसः सूच्यस्तु शृंगारः स्पृशेदपि रसान्तरम।।[6]

इस प्रकार वीथी में अल्प आकार के भीतर भावात्मक और विशेषतः शृंगारात्मक अनुभव को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास किया जाता है।

(9) अंक

अंक को कुछ आचार्यों ने उत्सृष्टिकांक के नाम से भी संबोधित किया है। यह सामान्यतः एक अंक का रूपक है और इसकी कथावस्तु प्रायः किसी प्रसिद्ध ऐतिहासिक या पौराणिक घटना से संबंधित होती है। इसका कथानक युद्ध की समाप्ति के बाद उत्पन्न शोक, करुणा और वियोगपूर्ण परिस्थितियों पर केंद्रित रहता है। अंक में युद्ध समाप्त हो जाने के पश्चात् पात्रों द्वारा अनुभव किए जाने वाले दुःख, वियोग और शोक को विशेष रूप से अभिव्यक्त किया जाता है। इसमें पात्रों के रुदन तथा विलाप का नाटकीय प्रदर्शन महत्त्वपूर्ण होता है। इस कारण इसकी भावात्मक संरचना युद्ध की वीरता की अपेक्षा युद्धोत्तर पीड़ा और मानवीय संवेदना को अधिक प्रमुखता देती है। कुछ आचार्यों ने इसकी संरचना को एक से तीन अंकों तक स्वीकार किया है। इस प्रकार अंक का मूल स्वर युद्धोत्तर शोक और करुण अनुभूति से निर्मित होता है।

(10) ईहामृग

ईहामृग चार अंकों में निर्मित रूपक माना जाता है। इसकी कथावस्तु में ऐतिहासिक तथा कल्पित दोनों प्रकार के तत्त्वों का समन्वय पाया जाता है। इसका नाम नायिका की प्रकृति और नायक की उसके प्रति प्राप्ति–चेष्टा से संबंधित है। जिस प्रकार मृग चंचल और सहज रूप से पकड़ में न आने वाला होता है, उसी प्रकार ऐसी नायिका को प्राप्त करने के लिए नायक द्वारा की जाने वाली

निरंतर ईहा अर्थात् चेष्टा इसके नामकरण का आधार मानी गई है। ईहामृग की कथा में नायक की प्राप्ति–इच्छा और उसके सामने उपस्थित परिस्थितियों का विशेष महत्त्व रहता है। इसमें दिव्य स्त्री को प्राप्त करने अथवा उसका अपहरण करने का वास्तविक प्रयास वर्जित माना गया है। इसी प्रकार कथा के नाटकीय विधान में वध को प्रत्यक्ष रूप से प्रदर्शित नहीं किया जाता। इस संबंध में आचार्य का निर्देश है –

वधप्राप्तस्य कुर्वीत वधं नैव महात्मनः।[7]

इस प्रकार ईहामृग में ऐतिहासिक और कल्पनात्मक कथावस्तु के समन्वय, चंचल प्रकृति वाली नायिका की प्राप्ति के लिए की जाने वाली चेष्टा तथा वध के निषेध जैसे तत्त्व इसकी स्वतंत्र नाट्यगत पहचान निर्मित करते हैं। इन भेदों में नाटक तथा प्रकरण ही मुख्य है। क्योंकि कथानक इसमें पंच सन्धियों से युक्त होता है। इसी कारण इसकी लोकप्रियता को ध्यान में रखकर मेरी अभिरूचि महाकवि भास कृत महाभारत मूलक रूपकों का ध्वनि शास्त्रीय समीक्षात्मक अध्ययन विषय पर शोध कार्य करने की हुई।

निष्कर्ष

महाकवि भास के महाभारत–मूलक रूपकों का ध्वनि–सिद्धांत की दृष्टि से अध्ययन संस्कृत नाट्यसाहित्य की भावात्मक गहराई और अर्थगर्भिता को समझने का महत्त्वपूर्ण आधार प्रस्तुत करता है। भास ने महाभारत की प्रसिद्ध कथाओं को नाटकीय स्वरूप प्रदान करते हुए मानवीय संवेदनाओं, नैतिक द्वंद्वों, कर्तव्यबोध, वीरता तथा करुणा का प्रभावशाली चित्रण किया है। उनकी रचनाओं में संवादों, पात्रों के व्यवहार और नाटकीय परिस्थितियों के माध्यम से प्रत्यक्ष अर्थ के अतिरिक्त अनेक अप्रत्यक्ष भावों एवं अर्थों की अभिव्यक्ति होती है। आचार्य आनंदवर्धन के ध्वनि–सिद्धांत के आलोक में मध्यमव्यायोग, दूतवाक्य, दूतघटोत्कच, कर्णभार तथा ऊरुभंग जैसी रचनाओं का विश्लेषण रसाभिव्यक्ति, व्यंग्यार्थ और पात्रों की आंतरिक भावभूमि को समझने में सहायक है। इन रूपकों में निहित ध्वन्यात्मक तत्त्व भास की रचनात्मक प्रतिभा और नाटकीय कौशल को विशेष महत्त्व प्रदान करते हैं। इस प्रकार, ध्वनि–सिद्धांत के आधार पर भास के रूपकों का समीक्षात्मक अध्ययन संस्कृत नाट्यपरंपरा और भारतीय काव्यशास्त्र के पारस्परिक संबंधों को स्पष्ट करता है। साथ ही, यह अध्ययन शास्त्रीय साहित्य की बहुस्तरीय अर्थवत्ता तथा उसकी मानवीय संवेदनाओं की सार्वकालिक प्रासंगिकता को समझने में महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकता है।

सन्दर्भ सूची

1. आनंदवर्धन. (1940). ध्वन्यालोकः (लोचन एवं बालप्रिया टीका सहित) (पट्टाभिराम शास्त्री, संपा.). चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस।
2. भास. (1962). भासनाटकचक्रम्रू भास के नाटकों का संग्रह (सी. आर. देवधर, संपा.). ओरिएंटल बुक एजेंसी।
3. भास. (1996). द कम्प्लीट प्लेज ऑफ भासरू पाठ, अंग्रेजी अनुवाद एवं टिप्पणियाँ (के. पी. ए. मेनन, संपा.). नाग पब्लिशर्स।
4. भरतमुनि. (1951). द नाट्यशास्त्र (मन्मोहन घोष, अनुवाद एवं संपादन). द एशियाटिक सोसाइटी।
5. धनंजय. (1941). दशरूपकम् (धनिक की अवलोक टीका सहितय काशीनाथ पांडुरंग परब, संपा.). निर्णय सागर प्रेस।
6. कृष्णमूर्ति, के. (1974). ध्वन्यालोक ऑफ आनंदवर्धनरू आलोचनात्मक संस्करण, अनुवाद एवं टिप्पणियाँ. कर्नाटक विश्वविद्यालय।
7. डे, एस. के. (1960). हिस्ट्री ऑफ संस्कृत पोएटिक्स। फिरमा के. एल. एम. प्राइवेट लिमिटेड।